सितार वादन में अनिबद्ध के अन्तर्गत आने वाले अंग व उनके द्वारा सौन्दर्यात्पत्ति

Dinesh Kumar
Music Teacher, Shivalik Public School, SST Nagar, Patiala

विकास की लम्बी कालावधि के पश्चात सितार–वादन के स्वरूप में संगीत के निबद्ध तथा अनिबद्ध दोनों पक्षों का समन्वय था अर्थात संवादात्मक तथा तालात्मक दोनों के माध्यम से राग प्रस्तुतिकरण किया जाने लगा। संवादात्मक पक्ष के अन्तर्गत आलाप तथा तालात्मक पक्ष के अन्तर्गत गत व बन्दिश वादन किया जाता था। इस तरह सितार–वादन भावपक्ष व कलापक्ष दोनों में सम्पूर्ण हुआ, वहीं हृदय की भावुकता, आलाप तथा बुद्धि का कौशल गत तथा विभिन्न लयकारियों के माध्यम से प्रकट हुआ।

सितार वादन में राग की अवतारणा की एक सामान्य रीति निर्धारित की गई, जिसका व्यवहार तत्कालीन कलाकारों द्वारा किया जाने लगा। इस पद्धति में सर्वप्रथम राग का आलाप प्रस्तुत किया जाता था। किसी राग का अनिबद्ध रूप से किया गया स्वर विस्तार 'आलाप' कहलाता था। आलाप के माध्यम से राग के स्वरूप, उसमें लगने वाले स्वरों के परस्पर सम्बन्ध, विश्रान्ति स्थान, स्वर–लगान, वादी, सम्वादी वर्ज्य आदि का दिग्दर्शन करवाया जाता था। वीणा पर आलाप करने का आरम्भ मध्यकाल में प्रारम्भ हुआ। ध्रुपद के नोमतोम के आलाप को बीन पर बजाया जाने लगा।

आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत राग प्रधान है। राग प्रदर्शन में भाव एवं कला पक्ष दोनों का विशेष महत्व होता है। भाव पक्ष के अन्तर्गत कलाकार अपने मनों भावों को स्वरों एवं शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। जबकि कलापक्ष के अंतर्गत कलाकार अपनी योग्यता द्वारा आनन्द की प्राप्ति कराता है। भाव एवं कला ये दोनों ही एक दूसरे पर आश्रित है। आलाप किसी भी राग को प्रस्तुत करने का सही और स्पष्ट माध्यम है। जिसके द्वारा कलाकार राग के स्वरूप को श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है। वर्तमान काल में गायक–वादक किसी भी प्रस्तुति से पहले उस गीत में लगने वाले रागात्मक स्वरों का थोड़ा सा स्वरूप दिखाता है। यह स्वरूप 'आलाप अंग' होता है। यह स्वरूप सरगम या आकार के रूप में किया जाता है। आलाप राग का मूल स्तम्भ है। संगीत रत्नाकर के अनुसार राग के आलापन को आलाप्ति कहते हैं। 'आलपन' शब्द का अर्थ राग को प्रकट करना व विस्तार देना है। अनिबद्ध भाव से एक राग को स्वर विस्तार के माध्यम से प्रस्फुटित करने को आलाप कहते हैं। राग का मूल ढ़ाचा आलाप पर टिका होता है और आलाप ही राग का परिचय कराता है। आलाप में हर स्वर की बढ़त राग की मर्यादा को ध्यान में रखकर की जाती हैं। भारतीय राग का आधार आलाप है इसमें मुख्य राग के स्वरूप को स्पष्ट करना होता है। आलाप को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है।

विस्तार की दृष्टि से और राग की प्रकृति की दृष्टि से अर्थात राग की प्रकृति की दृष्टि से विस्तार करना। विस्तार की दृष्टि से आलाप में राग की प्रकृति के अनुसार राग के एक–एक स्वर की क्रमिक बढ़त होती है। इसमें राग का विस्तार राग के दस लक्षणों के अनुसार किया जाता है। राग की प्रकृति तथा चलन को समझ कर रागात्मक स्वरों द्वारा विस्तार किया जाता है। वर्तमान आलाप वादन में विलम्बित अंग के अन्तर्गत राग का विस्तार तीनों सप्तकों में अनिबद्ध रूप से किया जाता है। राग के अनुसार वादी–संवादी, न्यास–विन्यास को ध्यान में रखकर आलाप का क्रमिक स्वरों में वादन किया जाता है। आलाप के प्रथम चरण में स्वरों को मीड़ या कण द्वारा लगाया जाता है। दूसरे चरण में वादक स्वरों को क्रमानुसार मीड़ और गमक के साथ लययुक्त आलाप करते हुए स्वरों में राग की बढ़त करते है। मन्द्र सप्तक से आरम्भ करते हुए राग में लगने वाले प्रत्येक स्वर की भूमिका को स्पष्ट करते हुए क्रमशः मध्य सप्तक तथा तार सप्तक तक राग का स्वरूप बताया जाता है। सितार में आलाप मुख्यतः 'बाज' व 'जोड़े' के तार पर किया जाता है तथा भराव के लिए 'चिकारी' का प्रयोग होता है। तीसरे चरण में वादक लय को बढ़ा कर वादन की अन्य क्रियाएं जैसे मीड़, गमक, कृन्तन, मुर्की आदि के प्रयोग द्वारा वादन को बढ़ाता है।

राग के स्वरों की विस्तार क्रिया को आलापचारी कहते हैं। स्वर विस्तार अथवा आलाप अनेकों प्रकार से किया जाता है। कुछ वादक सरगम का वादन करके, कुछ स्वरों को आकार की तरह बजाकर तथा कुछ वादक नोमतोम की तरह आलाप का वादन करते हैं। वर्तमान काल में इसकी प्रचलित दो विधियां है। प्रत्येक स्वर की बढ़त करते हुए क्रमिक आगे बढ़ना और दूसरे स्वछन्द रूप से रागात्मक एवं रागांग रूप में स्वर का विस्तार करना इन में से किस विधि का प्रयोग किया जाए यह वादक की शैली पर निर्भर करता है। उचित विधि तथा कुशलता से किया गया स्वर विस्तार रागात्मक वातावरण उत्पन करने में सहायक सिद्ध होता है। वादक की इन क्रियाओं जैसे मीड़, खटका, कृन्तन, कण, स्पर्श, गमक, ज़मज़मा इत्यादि के कुशल प्रयोग द्वारा सौन्दर्य उत्पन होता है या यूं कहे कि ये वही सौन्दर्यात्मक तकनीकें हैं जिनसे राग में माधुर्य उत्पन होता है।

राग की सुन्दरता उसमें लगने वाले स्वरों पर निर्भर होती है। राग को प्रस्तुत करने से पूर्व गायक या वादक के हृदय में राग की सूक्ष्मता का स्वरूप बना रहता है। उस रूप के आधार पर रजंकता एवं सौन्दर्यता आदि के तत्वों का ढ़ाचा टिका हुआ रहता है। जो वादक कलाकार राग में लगने वाले स्वरों की विशेष क्रियाओं से अलंकृत करके राग के स्वरूप को विशेष विधि द्वारा प्रस्तुत करते है उनके आलाप को ही उत्तम माना जाता है। आलाप प्रस्तुत करने के लिए सबसे पहले स्वरों का ज्ञान होना अति अनिवार्य है।

''आलाप में प्रायः 'दा' का बोल ही प्रयुक्त होता है। युग्म बोल बजाते समय 'रा' का बोल भी बजाया जाता है। आलाप में चिकारी लगाने का एक विशेष ढ़ग है। बाज अथवा जोड़े की तार पर

कुछ भी बजाने से पूर्व अर्थात जोड़े व बाज पर मिज़राब के प्रत्येक प्रहार से पूर्व चिकारी बजाई जाने के तुरन्त पश्चात ही मुख्य तार पर की जाने वाले क्रिया सम्पन्न की जाती है। आलाप में प्रत्येक स्वर का मात्र खड़ा प्रयोग ही न करते हुए सितार वादन की विभिन्न सौन्दर्यात्मक तकनीकों द्वारा सुसज्जित किया जाता है। यद्यपि ये क्रियाएं राग के सौन्दर्य वृद्धि हेतु प्रयुक्त होती है, परन्तु इनका प्रयोग राग की आवश्यकता के अनुरूप ही किया जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ राग ऐसे हैं जिनमें स्वरों का अलंकृत रूप कम दिखाया जाता है, ऐसे में खड़ा स्वर–प्रयोग ही उस राग में वांछित होता है। अतः राग के स्वरूप के अनुसार ही तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

सितार वादन में आलाप के अन्तर्गत राग की उपज कलाकार की स्वेच्छा पर निर्भर करती है। आलाप में प्रत्येक स्वर कितनी बार बजाया जाना चाहिए, कितने मिज़राब के आघात किए जाने चाहिए आदि के लिए विशेष नियम संगीत शास्त्रों में निर्धारित नहीं किए गए हैं।

चूंकि आलाप राग का स्वरूप व्यक्त करता है, अतः हमारी दृष्टि में आलाप में प्रत्येक प्रहार तथा स्वर प्रयोग पर ध्यान अपेक्षित होता है। इसका कारण यह है कि संगीत में अभिव्यक्ति का माध्यम कुल बारह स्वर ही होते हैं, जिनसे अनेक रागों का निर्माण होता है। स्वर लगाने के विभिन्न ढंग तथा स्वर की प्रत्येक राग में भूमिका ही वह माध्यम होता है जिसके द्वारा एक राग दूसरे से भिन्न हो जाता है। अतः आलाप में उपरोक्त पक्षों पर ध्यान दिया जाना अनिवार्य है। अन्यथा राग हानि की सम्भावना होती है।

किसी भी कलाकार को आलाप वादन करते हुए कुछ मूल बातों का ध्यान अवश्य रखना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर सर्वप्रथम इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि वादी, सम्वादी, अनुवादी, न्यास, वर्जित आदि स्वरों की क्या स्थिति है? किसी राग में इन पर यथोचित ध्यान देने से समप्राकृतिक राग से बचाया जा सकता है। आलाप में राग वाचक मुख्य स्वर संगति का विशेष स्थान होता है। प्रत्येक राग में कुछ ऐसे स्वर– विन्यास होते हैं, जो कि राग की पहचान का मुख्य आधार होते हैं तीनों सप्तकों में आलाप चारी करते हुए इन राग वाचक टुकड़ों का प्रयोग वादन में राग के स्वरूप को जीवन्त रखने का सशक्त माध्यम है। ऐसा देखने में आता है कि स्वर विस्तार करते हुए पुनः पुनः मुख्य विन्यास पर लौटा जाता है। राग का वातावरण स्थापित करने में यह क्रिया निःसन्देह लाभदायक सिद्ध होती है। उदाहरणार्थ राग यमन में नी रे ग, रे नी रे सा यह टुकड़ा बार–बार प्रयुक्त होता है। पूर्वांग में आलाप करते हुए मन्द्र सप्तक के स्वर से शुरू करके इसी स्वर–समुदाय को अन्त में जोड़ दिया जाता है। जैसे नी रे ग, नी ध नी रे ग, म ध नी रे ग, रे नी रे सा। इसी प्रकार मध्य सप्तक में बढ़त करते हुए नी, रे ग, ग, नी, रे, ग रे म ग, म, मप, मग, म ध प, प रे ग, रे, नी रे स। अन्त में तार षड़ज तक पहुंचने पर यही स्वर – विन्यास तार–सप्तक में बजाया जाता है। इस प्रकार राग, राग वाचक संगति द्वारा स्पष्ट होता है।

क्रियात्मक रूप में आधुनिक सितार वादन में आलाप के चार भाग होते हैं– स्थाई, अंतरा, संचारी और आभोग। स्थाई के आलाप का क्षेत्र मन्द्र तथा मध्य सप्तक होता है। प्रत्येक राग का आलाप अधिकतर मध्य षड़ज से ही प्रारम्भ होता है, क्योंकि संगीत में इसका अस्तित्व सार्वभौमिक माना गया है। षड़ज दिखाकर मन्द्र सप्तक के स्वरों में राग विस्तार करते हुए वहीं पर न्यास दिखाया जाता है। षड़ज के पश्चात् राग के आरोह में लगने वाले अन्य स्वरों पर न्यास क्रमशः किया जाता है। इस प्रकार मध्य सप्तक के निषाद को छूकर आलाप में सम लगाकर स्थाई का आलाप समाप्त किया जाता है। अन्तरे के आलाप की उठान प्रायः मध्य सप्तक के गंधार, मध्यम व पंचम से की जाती है। राग में अन्तरे की उठान ही उतरांग में प्रवेश को दर्शाती है। अतः अन्तरे के आलाप में यह मुख्य तथा महत्वपूर्ण स्थल माना जाता है। अन्तरे के पहले आलाप में तार षड़ज पर न्यास किया जाता है। अन्तरे में कई बार मन्द्र तथा मध्य सप्तक में किए गए स्थाई के काम की पुर्नावृत्ति होती है। अन्तरे के आलाप की समाप्ति भी तार सप्तक के अन्य स्वरों पर न्यास करने के पश्चात् तार षड्ज पर की की जाती है।

संचारी के आलाप में प्रायः षड़ज, मध्यम अथवा पंचम से प्रारम्भ करके तार षड़ज तक जाया जाता है। इसमें मींड़ तथा आन्दोलित स्वरों द्वारा गमक का प्रयोग अधिक होता है। संचारी के आलाप मध्यम, पंचम या मध्य–सप्तक के षड़ज पर ही समाप्त होते हैं। संचारी के पश्चात् तुरन्त आभोग आरम्भ होता है। आभोग में स्वर–विस्तार अन्तरे की भांति ही होता है। आभोग की विशेषता यह है कि इसमें तार–सप्तक के उच्चतम स्वर तक विस्तार होता है। कुछ कलाकार आलाप के प्रायः दो ही भाग स्थाई तथा अन्तरा मानते हैं।

सम के साथ ही जोड़ा–लाप की लय प्रारम्भ हो जाती है। आलाप में तरब के तारों का प्रयोग विशेष आकर्षण रखता है। सर्वप्रथम वादन प्रांरम्भ करते ही तरब के तार एक दो बार बजाये जाते हैं, जो कि वादन प्रारम्भ होने की सूचना के साथ–साथ श्रोताओं का ध्यान केन्द्रित करने में भी सहायक होते हैं। आलाप–वादन के बीच–बीच में भी जहां राग वाचक स्वर संगति बजाई जाती हैं वहां भी तरब के तार छेड़े जाते है। कुछ कलाकार आलाप के अन्त की उद्घोषणा भी तरब के तारों की छेड़ द्वारा ही करते हैं।

जोड़ालाप

आलाप मिज़राब के एकमठा आघात द्वारा तीन, चार अथवा अधिक स्वरों का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है, वहां सितार पर जोड़ा–लाप की क्रिया में आलाप की लय बढ़ाते हुए प्रायः जितने स्वर बजाए जाते हैं उतने ही आघात भी किए जाते है। इसमें मिज़राब के बोलों दा, रा, दिर, द्रा, दा द्रि, द्रिदा, दाऽर आदि का प्रयोग होता है। जोड़ के अन्तर्गत लड़ी, गुथाव, लड़गुथाव आदि विभिन्न अंगों का प्रयोग किया जाता है। जोड़ा–लाप की क्रिया में ताल–वाद्य द्वारा संगति नहीं होती,

परन्तु मिज़राब का कोई भी छन्द एक लय में बांध लिया जाता है, जैसे दा रा, दा दा रा, दा रा। लय को बढ़ाते हुए दिर दिर या दा रा रा बोलों के द्वारा ऐसे स्वर–समुदाय बनाए जाते है, जिनके द्वारा राग का स्वरूप स्पष्ट होता है। जोड अंग में संचारी और आभोग में दाहिने हाथ द्वारा बजाये जाने वाले मिज़राब के बोलों में 'रा' बोल चिकारी पर आघात करके तथा 'दा' का बोल बाज के तार पर प्रहार करके बजाया जाता है। फिरत के काम में स्वरों की बढ़त में पांच–पांच, सात–सात अथवा नौ–नौ स्वरों का क्रम बजाते हुए 'संहार' बजाया जाता है।

तीनों सप्तकों में प्रत्येक स्वर द्वारा बढ़त करते हुए जोड़ा–लाप की लय बढ़ाई जाती है, तथा राग–वाचक स्वर–समूहों की छोटी तथा बड़ी तानें बजाई जाती है। ये तानें विभिन्न प्रकार की हो सकती है, जैसे कुछ तानों में साधारण फिरत ही दिखाई जाती है; कुछ तानें मिज़राब के किसी छन्द को आधार मान कर बजाई जाती है दा रा दा, दा रा दा रा तथा दा रा दिर आदि। अन्य प्रकार की तानों में विभिन्न अंलकारों को राग के स्वरों में बांध दिया जाता है, कई बार तो तानों के अन्तर में तिहाई का प्रयोग भी किया जाता है। अति द्रुत लय में जब उपरोक्त तानों के प्रकार बजाए जाते हैं तो ये कलापक्ष उत्कृष्ट होता है।

जोड़ झाला

जोड़ालाप की तानों की समाप्ति तान में तिहाई लगाकर की जाती है। तत्पश्चात् जोड़ झाला प्रारम्भ किया जाता है। जोड़ झाले में बाज तथा चिकारी के तार पर मिज़राब के बोलों का क्रम निश्चित करके निरन्तर बजाए जाते हैं। बीच–बीच में बोलों के क्रम बदलते रहते है, जिसमें विविधता आ जाती है।

दा दा दा रा तथा द्रा दाऽर दा दा रा रा रा ठोंक–झाले के अन्तर्गत माने जाते हैं। सिद्धहस्त कलाकार जोड़ झाले में खड़े स्वरों की अपेक्षा सौन्दर्य वृद्धि हेतु जहां दाहिने हाथ से मिज़राब की कलात्मकता दिखाते हैं, वहां बायें हाथ से बजाये जाने वाले स्वरों में मीड़, कण कृन्तन आदि तकनीकों का प्रयोग करते हैं।

जोड़ झाले में प्रायः उल्टे झाले के प्रकारों का प्राधान्य होता हैं। उदाहरणस्वरूप–

1 रा दा दा दा 2 रा दा दा रा

3 रा दा रा ऽर रा 4 रा दा दा रा दा दा रा दा

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE

जोड़ झाले की समाप्ति तिहाई लगाकर की जाती है। यह तिहाई अधिकतर छोटी बजाई जाती है। आधुनिक सितार वादन में यहाँ तक अनिबद्ध वादन होता है।

राग एक सुक्ष्म तत्व है। प्रत्येक राग का अपना एक स्वरूप होता है। रागों के स्वर कभी–कभी एक समान भी दिखाई पड़ते है परन्तु फिर भी उनका लगाव एक राग से दूसरे राग को अलग करता

है। प्रत्येक राग में स्वर लगाव का ढंग, स्वर पर ठहराव और स्वर विकास के लिए स्वर संगति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

वर्तमान सितार वादन की एक विशेष प्रकार की व्यवस्थित रीति है। जिसका परिपालन सामान्य रूप से सभी कलाकार करते हैं। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत राग प्रस्तुतीकरण का प्रारम्भ आलाप से किया जाता है। आलाप की लय को बढ़ाते हुए जोड़ा लाप का वादन, अनिबद्ध, परन्तु विशेष लयबद्ध रूप से किया जाता है। तथा जोड़ झाले से इसकी समाप्ति होती है। अनिबद्ध वादन स्वतन्त्र रूप से तथा निबद्ध वादन में तबला संगति अनिवार्य है। सितार वादन में ''बन्धा हुआ'' और ''न बन्ध हुआ'' से हम दो अर्थ ले सकते हैं।

पहला–सतालता, दूसरा–पूर्व योजना यह दोनों पक्ष आपस में व्यावर्तक है यानि सताल प्रयोग में ''पूर्व नियोजन'' जरूरी नहीं है। तत्काल उदभावना भी सताल प्रयोग में सम्भव है। उसी प्रकार ''पूर्व योजना'' भी अताल रूप में बहुत कुछ सम्भव है। इस प्रकार ताल की नज़र में जो निबद्ध है, पूर्व नियोजन न होने के कारण अनिबद्ध भी है। उसी प्रकार अताल होने के कारण जो अनिबद्ध है, वह पूर्व नियोजन होने के कारण निबद्ध भी हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

कौर, डॉ0 भगवंत, परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत, कनिष्का पब्लिशर्ज डिस्ट्रीब्युटर्ज नई दिल्ली, 2002।

कुलकर्णी, डॉ0 वसुधा भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर,1990

खन्ना, डॉ0 जतिन्द्र सिंह, संगीत की पारिभाषिक शब्दावली, अभिषेक पब्लिकेशन, चण्डीगढ़

खान, विलायत हुसैन, संगीतज्ञों के संस्मरण संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, 1959

गर्ग लक्ष्मी नारायण, संगीत निबन्धावली, संगीत कार्यालय हाथरस, उ0प्र0(चतुर्थ संस्मरण) 1984

चक्रवर्ती डॉ0 इन्द्राणी संगीत मंजुष, मित्तल पब्लिकेशन्ज दिल्ली, 1988

चौधरी डॉ0 विमलकांत राय, राग व्याकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978

चौधरी डॉ0 सुभद्रा, संगीत संचयन, कृष्णा ब्रदर्ज अजमेर, राजस्थान ;1985

पाठक जगदीश नारायण, सितार सिद्धान्त, पाठक पब्लिकेशनज, इलाहाबाद, उ0प्र0

लछमण दास, सितार बोध भाग–दो, धनपत राय एण्ड सन्ज, जालन्धर सिटी, पंजाब

भट्ट विश्वम्भर नाथ, सितार शिक्षा, संगीत कार्यालय हाथरस, उ0प्र0

भटनागर डॉ0 रजनी सितार वादन की शैलियां, कनिष्का पब्लिशर्ज नई दिल्ली, 2006

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE